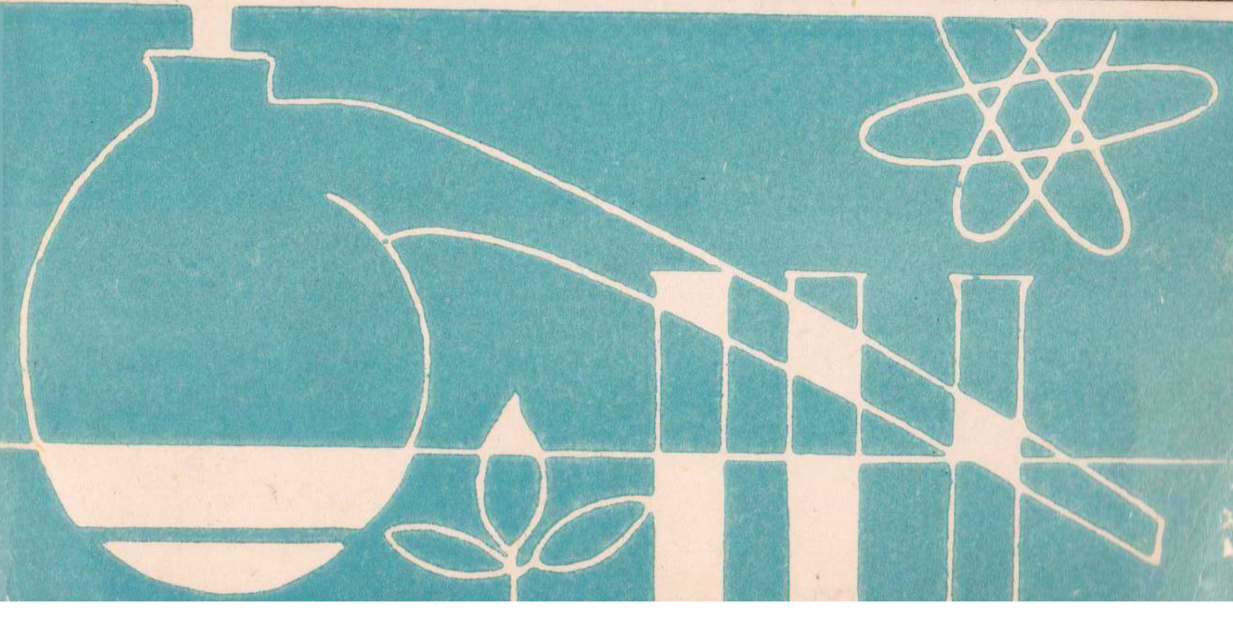


भारत के वैज्ञानिक

प्रफुल्लचन्द्र राय



भारत के महान् वैज्ञानिक

प्रफुल्लचन्द्र राय

विश्वमित्र शर्मा

शिक्षा भारती, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : आठ रुपये ४,00)

संस्करण 1989 : © प्रकाशक
शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली 110006 द्वारा प्रकाशित
PRAFULLA CHANDRA ROY (Biography), by Vishvmitra Sharma

क्रम



गांव की सोंधी मिट्टी

भारत गांवों का देश है। भारत की अस्सी प्रतिशत से अधिक जनता गांवों में रहती है। शहर तो बहुत बाद की बात है, प्रकृति गांव के बहुत निकट है। हमारा खाना, कपड़ा सभी कुछ तो गांवों से आता है। गांव की खुली वायु, गांव का खुला आंगन, खुले-खुले से खेत, लहलहाती हरियाली और उसके पास से बहती हुई मदमाती नदी, झूमते लहलहाते पेड़ और कहां मिलेंगे ?

गांव की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियां, कच्ची-पक्की राहें, तालाब और पोखर क्या शहरों में आपको मिल सकते हैं ?

भारत के गांव शायद संसार-भर में अनोखे गांव हैं और इसी तरह यहां पर रहने वाला इन्सान।

भारत के गांवों ने ही नहीं वरन् दुनिया के अनेक गांवों ने संसार को अनेक महापुरुष दिए हैं और आप इनकी जीवन-गाथाओं को पढ़ेंगे, तो आपको ऐसा दिखाई देगा कि मानो वे प्रकृति के सच्चे सपूत थे।

लिंकन का नाम तो आपने सुना है? आप उसके बारे में बहुत कुछ जानते भी होंगे। जंगल के लकड़ी के घर में पैदा होकर राष्ट्रपति भवन पहुंचने तक उसमें गांव का-सा सीधा-सादापन अन्त तक झलकता रहा।

लिंकन ही क्यों, हमारे देश के अनेक बड़े-बड़े महापुरुष, इतिहास की महान् हस्तियां, महान् वैज्ञानिक सभी तो गांवों की

ही देन हैं। जगदीशचन्द्र बसु, चन्द्रशेखर वेंकट रमण, हरगोविन्द खुराना आदि के नाम से कौन परिचित नहीं ?

हमारी इस कथा का चरित्रनायक भी भारत के एक ऐसे ही गांव में पैदा हुआ।

इसका नाम था—प्रफुल्लचन्द्र राय।

इस पुस्तक में अथवा अन्य कहीं भी आप प्रफुल्लचन्द्र राय का चित्र देखेंगे, तो आपको एक सीधा-सादा देहाती-सा दिखाई देनेवाला बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूंछवाला व्यक्ति दिखाई देगा। यही है वास्तविक भारतीय देहाती का स्वरूप, जिसे महानता के उच्च शिखर पर पहुंचने पर भी आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने बरकरार रखा।

बंगाल की तो यह खास परम्परा है, बंगाल की ही क्यों, हमारे देश के अन्य अनेक राज्यों, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और केरल राज्य में ऐसी परम्परा है और ऐसा दिखाई देता है कि वहां के अधिकांश लोग अपने गांव की सोंधी मिट्टी से जुड़े हुए हैं।

प्रफुल्लचन्द्र राय के मित्र ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, क्रिस्टोदास पाल, यतीन्द्रमोहन ठाकुर, दिगम्बर मित्र सब उन्हीं जैसे तो थे। अन्त तक इन सभी ने अपने गांवों की सोंधी मिट्टी से नाता जोड़े रखा।

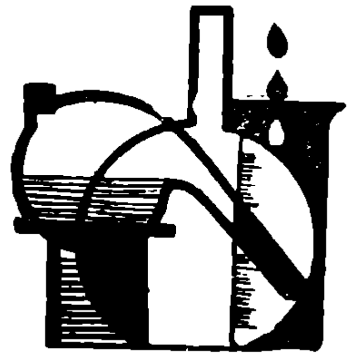
प्रफुल्लचन्द्र के गांव का नाम था—रड़ौली। गांव भले ही छोटा-सा था, परन्तु उन्हें इस बात से कभी भी लज्जित नहीं होना पड़ा। राजा प्रतापादित्य, राजा सीताराम राय इसी गांव के थे। वे सदा अपने क्षेत्र की आजादी के लिए प्रयत्न करते रहे। बंगाल के महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त बहुत निकट से इस गांव से जुड़े थे।

आजकल के पढ़े-लिखे लोग न जाने क्यों अपने गाँव से नाता तोड़ लेते हैं ? क्या पढ़ाई-लिखाई, विदेशी ढंग की वेश-भूषा, ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं, तारकोल से पुती हुई सड़कें, ईंट-पत्थरों

का अम्बार, ही उन्हें विवश करता है कि वे अपने गांव को भूल जाएं !

बालक प्रफुल्ल का जन्म 2 अगस्त, 1861 के दिन रड़ौली गांव में हुआ। इनके पिता का नाम हरिश्चन्द्र राय था। वह इस गांव के बड़े अच्छे खाते-पीते जमींदार थे। वह अच्छे पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। अरबी, फारसी के अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी की शिक्षा भी पाई थी। उन्होंने यहां एक स्कूल भी खोला था। बालक प्रफुल्ल की प्रारम्भिक शिक्षा इसी स्कूल में हुई थी।

बात 9-10 साल बाद की है। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद हरिश्चन्द्र राय अपने पुत्र की आगे की शिक्षा के लिए उसे कलकत्ता ले आए और उन्होंने उसे वहां के एक सुप्रसिद्ध स्कूल में भर्ती करा दिया।



अज्ञान अभिशाप है

प्रफुल्लचन्द्र के पिता जहां अच्छे पढ़े-लिखे थे, वहां उन्हें विभिन्न प्रकार की पुस्तकों का भी बहुत शौक था। एक अच्छा-खासा पुस्तकालय था उनका।

बालक प्रफुल्ल पहले-पहल जब कलकत्ता के सुप्रसिद्ध स्कूल, जिसका नाम हेयर था, में गया तो उसके चेहरे पर गांव का वही सीधा-सादापन झलकता था। शायद किसी शहरी छोकरे ने बालक प्रफुल्ल से मजाक भी किया हो और उसके देहातीपन की खिल्ली उड़ाई हो, परन्तु उससे प्रफुल्ल की कोई हानि नहीं हुई, उलटा उसे लाभ ही हुआ। संभवतः शहर के छोकरे उसकी खिल्ली न उड़ाते, तो वह उनमें घुलमिल जाता, परन्तु तब से वह उनसे और भी कटकर रहने लगा। स्कूल से आने के बाद वह अपने पिता के पुस्तकालय में जा घुसता और अपनी मर्ज़ी की किताब तलाश करता रहता।

उसे सबसे अच्छी लगतीं महापुरुषों की जीवनियां। उसे एक ऐसी किताब हाथ लग गई, जिसमें सैकड़ों विदेशी महापुरुषों की जीवनियां थीं। इन में न्यूटन, गैलीलियो, बेंजामिन फ्रेंकलिन और लिंकन आदि की जीवनियों ने बालक प्रफुल्ल को बहुत प्रभावित किया। लिंकन और फ्रेंकलिन आदि छोटे-छोटे बच्चों की मुसीबतों से उसे बहुत प्रेरणा मिली।

लिंकन कभी स्कूल नहीं जा सका। परन्तु उसे पढ़ने का कितना चाव था? आपको आश्चर्य होगा कि वह पचास-पचास मील के घेरे में से किताबें मांगकर लाता और पढ़ता। इसी प्रकार बेंजामिन फ्रेंकलिन दस वर्ष की उम्र में ही रोटी-पानी के चक्कर में पड़ गया। दिन में वह किसी दुकान में नौकरी करता, और दुकानें बन्द होने से पहले किसी दुकान से किताब मांग लाता और रात भर पढ़ता और सुबह दिन निकलने पर दुकान खुलते ही किताब लौटा देता।

बालक प्रफुल्ल के जीवन पर इस प्रकार की जीवनियों का बहुत प्रभाव पड़ा। विशेष रूप से उसका आकर्षक विषय था—वैज्ञानिकों की जीवनियां। परन्तु वह पढ़ता सभी कुछ था।

पिता के पुस्तकालय में एक ऐसी पुस्तक भी थी, जिसमें महान् व्यक्तियों के सुन्दर वाक्यों का संग्रह किया गया था।

एक दिन की बात है कि उसने अपने बड़े भाई से पूछा—'शेक का क्या मतलब है?' भाई बड़े चक्कर में था।

उसने जब प्रफुल्ल से वास्तविकता पूछी तो उसने वह उद्धरणों वाली किताब लाकर दिखाई। बड़े भाई ने देखा—शेक्सपियर का उद्धरण था। शेक्सपियर ने लिखा है—"अज्ञान एक अभिशाप है। ज्ञान प्राप्त करके आप स्वर्ग तक ऊंची उड़ान भर सकते हैं।"

भाई बड़े आश्चर्य में था कि यह छोटा-सा लड़का कौन-कौन-सी, किस-किस प्रकार की किताबें पढ़ता है। बड़े भाई ने बताया कि शेक्सपियर अंग्रेजी का प्रसिद्ध कवि व महान् नाटककार हुआ है।

बस प्रफुल्ल ने शेक्सपियर की सभी किताबें पढ़ डालने का फैसला किया। बालक प्रफुल्ल जब अपने पिता के पुस्तकालय में एक कोने में पड़ा पुस्तकें पढ़ता, तो वह खाना-पीना, खेलना सभी कुछ भूल जाता।

बच्चे जब अपनी आयु से अधिक उच्च ज्ञान वाली पुस्तकें पढ़ते हैं, तो शंकाएं पैदा होना स्वाभाविक है। आज अधिकांश

घरों में बच्चे अलग-थलग दिखाई पड़ते हैं। इनकी समस्याओं का समाधान करने वाला न बड़ा भाई होता है, न मां और न पिता। अधिकांश बच्चे आजकल जो कुछ भी सीखते हैं, वह प्रायः स्कूलों में ही। परन्तु प्रफुल्ल के पिता ऐसे न थे। प्रफुल्ल किसी भी प्रश्न के संबंध में कुछ जानना चाहता, तो वह उसे प्रेम से समझाते और बताते।

इस प्रकार के बच्चों में जब ज्ञान की भूख जागती है, तो वह कई बार अपने बड़े भाई, पिता व माता से ऐसे प्रश्न पूछते हैं, जिनसे ऐसा लगता है कि वह उनके ज्ञान की थाह पाना चाहता है। अनेक माता-पिता बच्चों के इस प्रकार के जिज्ञासा-भरे प्रश्नों से उकता जाते हैं और उन्हें डांट-फटकार कर एक ओर बिठा देते हैं। परन्तु जब कभी प्रफुल्ल इस प्रकार का प्रश्न अपने पिता से करता, वह उसके प्रश्न का उचित उत्तर ही न देते, वरन् उसके संबंध की अन्य अनेक बातें भी खुलकर बताते। इससे बालक के मन में ज्ञान के प्रति और अधिक जिज्ञासा बढ़ती।

प्रफुल्लचन्द्र के पिता हरिश्चन्द्र राय बहुत ही उदार विचारों के व्यक्ति थे। उनका अपने समय के अनेक बड़े व्यक्तियों से सम्बन्ध और मित्रता थी। बालक प्रफुल्ल ने जो अधिकांश जीवनियां पढ़ी थीं, उनका संबंध विदेशी महापुरुषों से था। इतनी ढेर सारी जीवनियों में उसे अपने देश भारत का केवल एक नाम मिला—राजा राममोहन राय। बालक सोचता कि क्या हमारे देश में कोई महान् व्यक्ति नहीं हुआ?

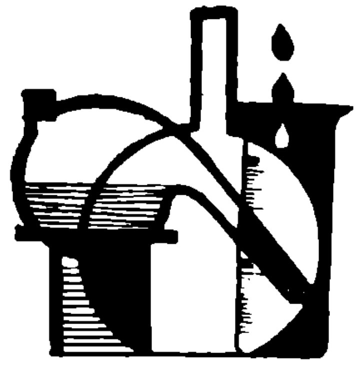
राजा राममोहन राय ने हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करने के लिए ब्रह्मसमाज की स्थापना की थी। प्रफुल्ल के पिता उन नीतियों से बहुत प्रभावित थे। निश्चय ही इन विचारों का असर बालक पर भी पड़ा।

कलकत्ता के हेयर स्कूल में आने के चार साल बाद की बात है। 1874 में बालक प्रफुल्ल चौथे दर्जे में पढ़ता था। उस समय वह भयंकर रूप से बीमार हुआ। पेचिश ने उसे धर दबाया।

उसका शरीर सूखकर कांटा हो गया। अन्ततः स्कूल जाना बन्द हो गया। लगभग सात महीने तक पढ़ाई बन्द रही।

आप जानते हैं इन सात महीनों तक बालक प्रफुल्ल क्या करता रहा ? वह केवल चारपाई पर लेट कर आहें नहीं भरता रहा, उसने अपना बिस्तर उठाकर पिता के पुस्तकालय में लगा दिया और दिनरात वहां पड़ा-पड़ा अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ता रहता।

शायद उसके मन-मन्दिर में ज्ञान की लौ लपलपा रही थी, क्योंकि उसने शेक्सपियर का उद्धरण पढ़ा था, 'अज्ञान अभिशाप है।'



आश्चर्यपूर्ण घटना

आजकल के विद्यार्थी परीक्षा में पास होने के लिए केवल स्कूल की पुस्तकें पढ़ लेना ही काफी समझते हैं। परन्तु स्कूल की पुस्तकों से पास हो जाना ही जीवन में पास होने की बात नहीं है। यदि यह बात होती तो अनेक महापुरुष अन्त तक मूर्ख ही समझे जाते। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को गणित से बहुत कम लगाव था। एडीसन को अपनी क्लास में मूर्ख लड़का समझा जाता था। आइंस्टाइन अपने अध्यापकों के लिए बहुत समय तक समस्या बना रहा, क्योंकि वह जो प्रश्न पूछता, अध्यापक उसका उत्तर न दे पाते और टालमटोल करके उसे चुप करा देते।

बालक प्रफुल्ल सात महीने रोगी रहने के बाद जब स्कूल में आया और वार्षिक परीक्षा हुई तो वह अपनी कक्षा में प्रथम था।

निश्चय ही कक्षा के छात्रों को इस बात से आश्चर्य हुआ—बीमारी के दिनों में प्रफुल्ल ने पिता के पुस्तकालय से अंग्रेजी की अनेक पुस्तकें पढ़ीं। साथ ही अपने देश के साहित्य और इतिहास से संबंधित पुस्तकें भी पढ़ीं।

हरिश्चन्द्र राय के पुस्तकालय का दिनोंदिन विकास होने का एक कारण यह भी था कि बालक प्रफुल्ल का बड़ा भाई भी पुस्तकें पढ़ने का बड़ा शौकीन था। वह जहां-तहां, यहां तक कि कबाड़ियों की दुकानों से भी अच्छी व जानकारीपूर्ण पुस्तकें खोजने के प्रयत्न में लगा रहता। इसका परिणाम यह हुआ कि जो

पुस्तक एक बार.घर में आ जाती, दस-ग्यारह वर्ष का यह बालक भी उसे अवश्य पढ़ डालता ।

उन दिनों बंगाल में राष्ट्रीय चेतना फैल गई थी और 'बंग-दर्शन', 'आर्य-दर्शन', 'सोम प्रकाश', 'अमृतबाजार पत्रिका' आदि पत्र भी प्रकाशित होने लगे थे । इनसे जनता को नई चेतना प्राप्त होती थी । इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के संस्कृत व्याकरण को पढ़ने से प्रफुल्ल को एक विशेष लाभ हुआ । बड़े भाई एक बार लैटिन सीखने के चक्कर में एक किताब ले आये। उन्हें लैटिन और संस्कृत में बहुत समानता दिखाई दी । आश्चर्य की बात है कि बालक प्रफुल्ल ने लैटिन सीखना आरम्भ कर दिया। लैटिन के ज्ञान के बाद उसे फ्रेंच भाषा सीखने की सूझी । कुछ ही दिनों में उसने फ्रेंच और लैटिन का पूर्ण अभ्यास कर लिया, क्योंकि प्रफुल्ल ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा लिखित संस्कृत व्याकरण पहले ही पढ़ रखी थी, इसलिए लैटिन का ज्ञान प्राप्त करने में अधिक कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि लैटिन औरसंस्कृत शब्दों में बहुत समानता होती है और लैटिन का ज्ञान हो जाने पर फ्रेंच सीखना काफी सरल हो जाता है।

जैसा कि प्रायः सभी जानते हैं कि मैट्रिक के बाद विद्यार्थी को कुछ ऐसे विषय लेने पड़ते हैं, जिन्हें ज्ञान की विशेष शाखा कहा जा सकता है । इसलिए मैट्रिक पास करने के बाद प्रफुल्लचन्द्र के लिए यह निश्चय करना आवश्यक था कि आगे की पढ़ाई में किन विषयों को चुना जाए।

बालक प्रफुल्ल को प्रारम्भ से ही दो बातों में विशेष रुचि थी। पहला पुस्तक पढ़ना, दूसरा विज्ञान सम्बन्धी परीक्षण करना । उन दिनों एफ० ए० में रसायन विज्ञान एक जरूरी विषय होता था। विज्ञान-प्रेम के कारण प्रफुल्ल ने रसायन-विज्ञान लेने का निर्णय किया।

उन दिनों बंगाल में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम काफी

प्रसिद्ध था। वह बहुत बड़े शिक्षाशास्त्री और देशभक्त थे। उन्होंने मैट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूशन के नाम से एक कॉलेज़ खोल रखा था। बालक प्रफुल्ल उस कॉलेज की ओर आकृष्ट हुआ और वहां दाखिला लिया। यह भारतीय संस्था होने के साथ-साथ बच्चों से अधिक फीस भी न लेती थी।

इन्हीं दिनों प्रफुल्ल के पिता हरिश्चन्द्र राय की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण वे कलकत्ता से फिर गांव चले गए। ऐसी स्थिति में प्रफुल्ल को होस्टल में रहने का प्रबन्ध करना पड़ा।

जैसा कि आपको मालूम है—बालक प्रफुल्ल अपनी कक्षा की पुस्तकों से सन्तुष्ट न होता था और अब पिताजी के गांव वापिस लौट जाने पर उसके लिए आवश्यक था कि वह अतिरिक्त पढ़ाई का स्वयं प्रबन्ध करता। इसलिए उसने कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलिज में 'बाहरी छात्र' के रूप में अपना नाम लिखाया। रसायन-विज्ञान से उसे इतना अधिक मोह हो गया था कि इस विषय की जो भी पुस्तक उसे हाथ लगती, वह उसे पूरी तरह पढ़ डालता और उनमें बताए गए परीक्षण भी करने का प्रयत्न करता।

परीक्षणों के लिए काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता था, क्योंकि कॉलेजों की प्रयोगशालाओं में टेस्ट-ट्यूब आदि को छोड़कर अधिक यंत्र न हुआ करते थे, क्योंकि ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों को इस बात में अधिक रुचि न थी कि भारतीय लोग विज्ञान में अधिक प्रवीणता प्राप्त करें।

ऐसी स्थिति में बालक प्रफुल्ल ने एक रास्ता निकाला। होस्टल के जिस कमरे में वह रहता था, उसके साथ एक और विद्यार्थी था और दोनों का विषय भी रसायन-विज्ञान था। दोनों ने मिलकर अपने कमरे में ही छोटी-सी प्रयोगशाला कायम की।

एक बार दोनों ने दो पतली-पतली नलियां बनवाईं। एक नली से आक्सीजन और दूसरी नली से हाइड्रोजन गैसों का प्रयोग करना आरम्भ किया। यह नलियां साधारण और कच्ची थीं, इसीलिए आक्सीजन गैस हाइड्रोजन वाली गैस की नली में पहुंच

गई और जोर का धमाका हुआ। अच्छी बात यह थी कि उस समय होस्टल में न तो लड़के थे और न किसी को चोट लगी।

कहावत है कि पूत के पांव पालने में ही दिखाई दे जाते हैं। प्रफुल्ल उन विद्यार्थियों में से था, जिनके मन में कुछ-न-कुछ आश्चर्यजनक कार्य करने की धुन समाई रहती है।

उन दिनों सारे भारत में गिलक्राइस्ट नामक छात्रवृत्ति के लिए एक परीक्षा हुआ करती थी। प्रफुल्ल के मन में इस परीक्षा में बैठने की इच्छा उत्पन्न हुई। इस परीक्षा में बैठने की उसमें इच्छा पैदा होने के कई कारण थे।

पहला यह कि चुपचाप कुछ कर दिखाया जाए।

दूसरा यह कि इस परीक्षा के लिए लैटिन, ग्रीक या संस्कृत और फ्रेंच या जर्मन भाषाओं की जानकारी आवश्यक थी। प्रफुल्ल ने लैटिन और फ्रेंच भाषाएं पढ़ रखी थीं, परन्तु उसे इस बात का परीक्षण करने का अवसर नहीं मिला था कि वह दोनों भाषाएं किस सीमा तक जानता है।

तीसरा प्रमुख कारण यह था कि गिलक्राइस्ट छात्रवृत्ति मिलने पर इंग्लैण्ड जाकर पढ़ने का अवसर मिल जाता था।

सो प्रफुल्ल ने चुपचाप इस परीक्षा में बैठने का निश्चय किया। उसका यह निश्चय केवल उसके बड़े भाई ही जानते थे। उन दिनों वह कॉलेज की पढ़ाई भी करता, रसायन-विज्ञान सम्बन्धी परीक्षण भी करता और अपना पुस्तक-प्रेम भी दबाए न रख पाता। चूंकि एफ० ए० में संस्कृत पढ़ाई जाती थी और स्वयं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर संस्कृत के महान् विद्वान् थे, इसलिए इस कॉलेज में कालिदास के रघुवंश आदि काव्यग्रन्थ पढ़ाए जाते थे। संस्कृत का थोड़ा-बहुत ज्ञान तो बालक प्रफुल्ल ने पहले ही प्राप्त कर लिया था परन्तु कालिदास के 'कुमारसम्भव' आदि पढ़ने के लिए उसने एक पंडित से सहायता प्राप्त की।

प्रफुल्ल से सम्बन्धित दूसरे आश्चर्य के विषय में हम जो बात

कह रहे हैं, आखिर उसका भेद अन्य छात्रों पर खुल ही गया।

उसे एक दिन एक लड़के ने टोक ही तो दिया। अरे वाह ! तुम्हारा नाम तो लन्दन विश्वविद्यालय के गजट में छपेगा !

लड़के ने तो ताना दिया था, परन्तु प्रफुल्ल ने चुपचाप सहन कर लिया। इसका एक लाभ यह हुआ कि छात्रवृत्ति सम्बन्धी इस परीक्षा में बैठने का संकल्प और निश्चय अधिक मजबूत हो गया।

प्रफुल्ल परीक्षा में बैठा और महीनों तक कोई परिणाम न आने के बाद वह इस बात को भूल बैठा और उसने वह छात्रवृत्ति प्राप्त करने की आशा ही छोड़ दी। उसने सोचा क्यों न कॉलेज की परीक्षा में ही सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने की तैयारी की जाय ?

और एक दिन जब वह कॉलेज में पहुंचा, तो कुछ सहपाठियों ने शैतानीपूर्ण हंसी हंसते हुए पूछा—"क्या आज का 'स्टेट्समैन' पढ़ा ?"

प्रफुल्ल ने सोचा, शायद संसार में कोई बहुत बड़ी घटना हो गई है जिसका उसे ज्ञान नहीं है। इसलिए वह बड़े असमंजस में पड़ गया। उसे दुःख इस बात का हुआ कि सहपाठी उसे बहुत अधिक पढ़नेवाला और जानकार मानते हैं, परन्तु आज 'स्टेट्समैन' में ऐसा क्या छपा है, जिसका उसे ज्ञान नहीं है ?

'स्टेट्समैन' उन दिनों कलकत्ता से निकलने वाला एक प्रमुख दैनिक पत्र था जो अंग्रेजी में छपता था और इसका सम्पादक भी अंग्रेज हुआ करता था। 'स्टेट्समैन' आज भी कलकत्ता और दिल्ली से प्रकाशित होता है। प्रफुल्ल को उदास देखकर आखिर एक साथी ने उस दिन का 'स्टेट्समैन' उसके सामने रख दिया।

समाचार था : कलकत्ता, गिलक्राइस्ट छात्रवृत्ति परीक्षा में दो भारतीय छात्र उत्तीर्ण। एक पारसी लड़का, बम्बई का रहने वाला—नाम बहादुरजी। दूसरा कलकत्ते का एक बंगाली लड़का नाम—प्रफुल्लचन्द्र राय।

'अब खिलाओ मिठाई' ! साथियों ने जोर का नारा लगाया।

बालक प्रफुल्ल को ऐसा अनुभव होने लगा कि जैसे नये प्रभात का उदय हुआ हो। वह तो पूर्ण रूप से आशा छोड़ चुका था, परन्तु अब उसके मन की इच्छा पूरी होने का समय आ गया था।

प्रफुल्ल ने अपने पिताजी के नाम एक चिट्ठी लिखी। उसमें सारी घटना का वर्णन किया। 'स्टेट्समैन' से उस खबर की कतरन काटकर अपने गांव पिताजी को भेजी।

भारत में उन दिनों सुधार-आन्दोलन चल चुका था। बंगाल तथा कुछ अन्य स्थानों के व्यक्ति विलायत जाने लगे थे। उन दिनों विलायत जाना अच्छा नहीं माना जाता था। विलायत जाने वालों को जात-बिरादरी से अलग कर दिया जाता था।

प्रफुल्ल को आशा थी कि पिताजी तो आज्ञा दे देंगे, परन्तु माताजी का क्या होगा ?

कुछ दिन पत्र न आने पर आज्ञा लेने के लिए वह स्वयं गांव गया। माताजी पर पिता के विचारों का प्रभाव तो था, परन्तु वह अपने पुत्र से पृथक् रहने की कल्पना न कर सकती थीं।

प्रफुल्ल ने मां के चरणों में सिर रखकर उनसे आशीर्वाद मांगा, तो मां के आंसुओं से पहले उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली।

"मां, मुझे आशीर्वाद दो, मैं अपने कार्य में सफल होकर लौटूं। और विश्वास रखो मां, पिताजी की बिकी हुई जमीन को फिर खरीद लूंगा और इस टूटे-फूटे मकान को भी नया बनवा दूंगा।"

बालक प्रफुल्ल को क्या मालूम था कि जमीन और मकान खरीदने के अतिरिक्त रुपए का कुछ और भी उपयोग होता है ?



इंगलैण्ड में

और यह देहाती-सा दिखाई देने वाला लड़का जा पहुंचा लन्दन ।

नया शहर, नए लोग । कुछ मालूम नहीं कैसे रहते हैं ? क्या खाते-पीते हैं ? कैसे बोलते-चालते हैं ? क्या रीति-रिवाज हैं ?

आखिर उसने एक उपाय खोज ही लिया । बहुत-सी जरूरी बातें सीखने के लिए होटल के खानसामा से दोस्ती की। उसे थोड़ी-सी बख्शीश दी । बख्शीश मिलने पर खानसामा खुश हुआ और उसने बताया कि छुरी कांटों से ऐसे खाया जाता है । तश्तरी इस प्रकार रखी जाती है । प्रफुल्लचन्द्र ने खानपान में आनेवाली कठिनाइयों को इस प्रकार समाप्त कर लिया ।

अक्तूबर, 1882 में प्रफुल्ल ने एडिनबरा विश्वविद्यालय में अपना नाम लिखवाया । जगदीशचन्द्र बसु वहां पहले से ही पढ़ते थे । दोनों का परिचय हुआ और परिचय मित्रता में बदल गया ।

प्रफुल्ल के सामने एक समस्या थी—पहनावे की । नगर में पढ़नेवाले छात्र कोट-पतलून और टाई आदि पहनते थे । खाने के समय की पोशाक दूसरी होती थी—दुमदार कोट । प्रफुल्ल को यह बिलकुल अच्छा नहीं लगा । उसने इससे छुटकारा पाने का निश्चय किया । उसने राजा राममोहन राय की तस्वीरें देखी थीं । प्रफुल्ल ने भी उसी प्रकार का चोगा बनवाया और मिली-जली इस पोशाक में अपने आपको गौरवपूर्ण समझा । आखिर लड़का

तो देहात का था न !

एडिनबरा विश्वविद्यालय उन दिनों संसार-भर के विश्व-विद्यालयों में विज्ञान की पढ़ाई के लिए बहुत ही प्रसिद्ध था। यहां बड़े-बड़े रसायन-विज्ञानी अध्यापक थे, जैसे डॉ० गिब्सन, डॉ० अलेक्जेण्डर ब्राउन और डॉ० डोबिन आदि।

उन दिनों विज्ञान सम्बन्धी अधिकांश पुस्तकें ज़र्मन भाषा में थीं। विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली बहुत-सी अंग्रेजी पुस्तकें जर्मन भाषा का अनुवाद थीं। प्रफुल्लचन्द्र ने सोचा कि क्यों न सीधे जर्मन भाषा से विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ी जाएं। प्रफुल्ल के लिए जर्मन भाषा सीखना कतई कठिन सिद्ध न हुआ। कुछ ही दिनों में उसने जर्मन भाषा सीख ली और जर्मन भाषा की पुस्तकों से लाभ प्राप्त करने लगा।

बात 1885 की है।

प्रफुल्ल उन दिनों बी० एस-सी० की तैयारी कर रहे थे। उन्हीं दिनों विश्वविद्यालय के प्रधान ने एक निबन्ध-प्रतियोगिता की घोषणा की और कहा गया कि सबसे अच्छा निबन्ध लिखने वाले को पुरस्कार दिया जाएगा।

निबन्ध का विषय था—'भारत : 1857 के विद्रोह से पहले और बाद में।'

जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, भारत में स्वाधीनता-प्राप्ति के विचार पनप चुके थे और भारतीय लोग अनेक बार देश की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न भी कर चुके थे। अंग्रेज जिसे 1857 का विद्रोह कहते हैं, वह वास्तव में भारत की स्वतन्त्रता का सबसे पहला और प्रमुख प्रयत्न था। इसमें अनेक राजाओं-नवाबों और सेनाओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया था। स्वतंत्रता-प्राप्ति के इस भयंकर प्रयत्न से अंग्रेज सतर्क हो चुके थे और उन्होंने भयंकर अत्याचारों द्वारा इसे दबाने का यत्न किया था। इतना ही नहीं, वे भारतीयों के दिलों में से यह बात निकाल देना चाहते थे कि 1857 का संग्राम स्वतंत्रता-संग्राम था। इसीलिए

वह इसे अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध 'बग़ावत' का नाम देते थे।

विश्वविद्यालय के अंग्रेज अधिकारियों का विचार था और वे यह चाहते थे कि इंग्लैण्ड में पढ़नेवाले भारतीय छात्र 1857 की घटनाओं की निन्दा करें और अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा हो। उनका यह कहना था कि अंग्रेजों का राज्य आने से पहले भारत एक पिछड़ा हुआ देश था और अंग्रेजी राज्य में ही यह उन्नति-पथ पर अग्रसर हुआ।

वस्तुतः यह निबन्ध विश्वविद्यालय में पढ़नेवाले भारतीय छात्रों की देशभक्ति की परीक्षा थी। अंग्रेज अधिकारी यह जानना चाहते थे कि कितने छात्र इंग्लैण्ड में ऊंची शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद हमारे विचारों से सहमत होंगे और कितने हमारे विचारों के विरोधी।

अनेक छात्रों ने इस निबन्ध-प्रतियोगिता को अपने लिए एक चुनौती समझा। प्रफुल्ल ने भी एक चुनौती समझते हुए इस निबन्ध प्रतियोगिता में हिस्सा लेने का निश्चय कर डाला।

निश्चय तो कर लिया, पर काम आसान न था। इसके लिए भारत का इतिहास, देश की आर्थिक और सामाजिक स्थिति तथा राजनैतिक सिद्धान्तों की जानकारी होना आवश्यक था।

परन्तु प्रफुल्ल जैसे मेधावी विद्यार्थी के लिए यह काम न तो कठिन था और न असंभव। आखिर उन्होंने एक निबन्ध लिखा।

प्रफुल्लचन्द्र को पुरस्कार नहीं मिला, क्योंकि उन्हें पता था कि अपने निबन्ध में उसने कहीं अंग्रेजों की प्रशंसा न की थी, परन्तु इतना होने पर भी प्रिन्सिपल साहब ने घोषणा की कि प्रफुल्लचन्द्र का निबन्ध अन्य लड़कों के निबन्धों की अपेक्षा असाधारण रूप से बढ़िया है।

परीक्षकों का विचार था कि इस लेख में बहुत से विद्यार्थियों ने ब्रिटिश-शासन के विरुद्ध निन्दापूर्ण बातें लिखी थीं। प्रफुल्ल ने भी अपने लेख में अंग्रेजों पर यह आरोप लगाया था कि विदेशी शासन भारत की प्रगति में बहुत बड़ा रोड़ा है।

स्पष्ट था कि इस प्रकार के विचारों से उनको पुरस्कार कैसे मिलता ? प्रफुल्लचन्द्र ने वह निबन्ध वापस लेकर अपने खर्च पर पुस्तक के रूप में छपवा दिया।

प्रफुल्लचन्द्र का विचार था और जैसा कि प्रत्येक देशभक्त का हो सकता था कि भारत के संबंध में ब्रिटेन की जनता और वहां की सरकार को सही स्थिति बताई जाय, तो हो सकता है कि देश की हालत सुधर जाय। उन्होंने लिखा था—

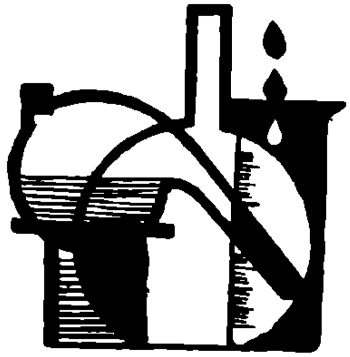
"दुनिया के इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं, जहां किसी अधिकार करनेवाली जाति ने अपनी इच्छा से गुलाम लोगों को रियायतें दी हों।"

इस प्रकार के नये विचारों के साथ बी० एस-सी० की परीक्षा दी और शानदार सफलता प्राप्त की।

बी० एस-सी० की परीक्षा और डाक्टरेट की तैयारी के लिए खोज करना और उस पर निबंध लिखना बहुत आवश्यक था। प्रफुल्लचन्द्र के शोध-कार्य का विषय था—कच्ची धातुओं का विश्लेषण।

विषय भले ही कितना कठिन हो, परन्तु प्रफुल्लचंद्र जैसे विद्यार्थी के लिए असंभव न था और अन्त में डाक्टरेट की उपाधि उन्हें सम्मानपूर्ण ढंग से प्राप्त हुई।

अब वह प्रफुल्ल से डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय बन गये थे। इससे प्रफुल्लचन्द्र राय का सम्मान बहुत बढ़ गया और 1887-88 में एडिनबरा विश्वविद्यालय की रसायन-सोसाइटी ने उन्हें अपना उपाध्यक्ष नियुक्त किया।



पुनः भारत में

डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय अब भारत लौटने की सोच रहे थे। लंदन विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त छात्रों को यह आशा रहती थी कि उन्हें भारत पहुंचते ही कोई उच्च पद प्राप्त हो जायेगा, परंतु प्रायः सभी भारतीयों को इस बात के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता था। डॉ० जगदीशचन्द्र बसु के साथ भी ऐसा ही हो चुका था। उनके लिए तो ब्रिटिश वायसराय के नाम तक की सिफारिशी चिट्ठियां थीं, तब भी उन्हें अनेक बार विभिन्न अधिकारियों के पास चक्कर लगाने पड़े और बहुत समय बाद उनका कार्य बना।

एडिनबरा के अध्यापक डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय से बहुत प्रसन्न थे जिनमें डॉ० ब्राउन के नाम का हम पहले जिक्र कर चुके हैं। उन्होंने अनेक उच्च अधिकारियों के पास प्रफुल्ल के संबंध में सिफारिशी चिट्ठियां लिखीं। एडिनबरा विश्वविद्यालय के प्रिंसिपल सर विलियम म्योर ने भारत का शासन चलाने वाली सरकारी कमेटी, इंडिया कौंसिल के सदस्य सर चार्ल्स के नाम एक पत्र दिया। सर चार्ल्स बहुत उदार व्यक्ति थे। उन्होंने इससे पहले भी अनेक भारतीय छात्रों की सहायता की थी। उन्होंने डॉ० प्रफुल्ल को घर पर बुलाकर उन्हें यह भरोसा दिलवाया कि भारत के शिक्षा-विभाग में बढ़िया नौकरी दिलवाने में पूरी सहायता करेंगे!

डॉ० प्रफुल्ल को भारत सचिव के नाम भी एक पत्र मिला, परन्तु बहुत अर्से तक इतनी बड़ी सिफारिशें होने के बावजूद डॉ० प्रफुल्ल को कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि उस समय के अंग्रेज अधिकारी भारतीयों के प्रति प्राय: उपेक्षा का व्यवहार करते थे। यदि किसी को उच्च पद प्राप्त हो भी जाता था, तो अंग्रेजों के बराबर उन्हें वेतन न मिलता था। जगदीशचन्द्र बसु तीन वर्ष तक इस प्रकार का संघर्ष कर चुके थे।

उन दिनों कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ० टोनी छुट्टियों पर इंग्लैंड आये हुए थे। सर चार्ल्स ने डॉ० प्रफुल्ल को उनसे मिलवाया। डॉ० टोनी प्रफुल्लचन्द्र से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भारतीय शिक्षा-विभाग के उच्च अधिकारी के नाम एक पत्र भी दिया, जिसमें उन्होंने उनकी विद्वता और सरलता का जिक्र करते हुए किसी उच्च पद पर नियुक्ति का अनुरोध किया।

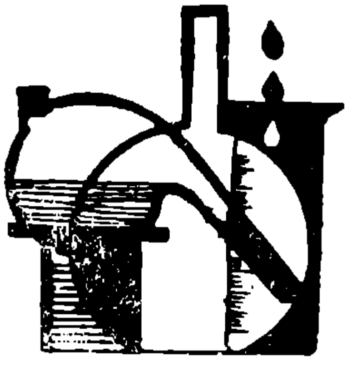
आखिर डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय सिफारिशी चिट्ठियों को लेकर स्वदेश लौट आये।

स्वदेश लौटने पर उन्होंने सबसे पहले जो कार्य किया वह था अपनी वेश-भूषा को बदलने का। आते ही उन्होंने अपने एक मित्र से धोती और कुर्त्ता मांग कर पहना। मानो उन्होंने यह एक मौन व्रत लिया कि वह अपने शेष जीवन में इसी प्रकार की सीधी-सादी देहाती पोशाक पहना करेंगे और डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक, जबकि उन्हें धन और यश की कोई कमी न रह गई थी, सदा इसी सीधे-सादे धोती-कुर्ता वाले लिबास में ही रहे।

स्वदेश लौटने पर प्रफुल्लचन्द्र राय दो-तीन दिन कलकत्ता रहकर माता-पिता से मिलने अपने गांव चले गये। बेटा छ: वर्ष बाद विलायत से अपने घर आया था और इस बीच घर में कुछ ऐसी घटनायें हो चुकी थीं, जो प्रफुल्लचन्द्र को देखते ही पुन: ताजी हो उठीं। इस बीच डॉ० प्रफुल्ल की बहन का देहान्त हो

चुका था। माता-पिता ने उन्हें इस बात की सूचना इसलिए न दी थी कि उनकी पढ़ाई में विघ्न पड़ेगा। परन्तु जब वह घर पहुंचे, तो दुखद स्मृतियां पुनः ताजी हो उठीं। माता की अश्रुधारा देखकर वह भी विह्वल हो उठे और जब उन्हें इस बात का पता चला, तो उनके हृदय में अपने माता-पिता के प्रति आदर का एक ज्वार उमड़ आया।

प्रफुल्लचन्द्र राय कुछ दिन अपने गांव रहे और माता-पिता को अपनी पढ़ाई के दिनों की घटनाओं के किस्से सुनाते रहे। इस प्रकार घर के लोग जब पिछली दुखद घटनाओं को भूलने लगे तो प्रफुल्लचन्द्र राय कलकत्ता लौट आये। उन्हें नौकरी पाने के लिए प्रयत्न करना था। इस समय यह और भी आवश्यक था कि वह जल्दी से जल्दी कोई नौकरी पकड़ लें, क्योंकि घर की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी।



ताने की कसक

प्रफुल्लचन्द्र राय कलकत्ता आकर अपने पुराने मित्र डॉ० जगदीशचन्द्र बसु के साथ रहने लगे। यहां रहते हुए, जहां वह अपनी नौकरी के लिए प्रयत्न करते, वहां समय मिलने पर रसायन-विज्ञान की अनेक पुस्तकें भी पढ़ते रहते। डॉ० जगदीशचन्द्र बसु वनस्पति-विज्ञान के सम्बन्ध में कार्य कर रहे थे। उन्हें देखकर डॉ० राय भी वनस्पति-विज्ञान में रुचि लेने लगे। उनके साथ मिलकर पेड़-पौधे इकट्ठे करते और उनके परीक्षणों में भी रुचि लेते। परन्तु उनका अपना मुख्य विषय रसायन-विज्ञान था। अतः उनका अधिकांश समय रसायन-विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों के अध्ययन और चिन्तन-मनन में बीत जाता।

और आखिर उन्हें एक दिन प्रेसीडेन्सी कॉलेज में अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी का परवाना मिला।

अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी का परवाना प्राप्त करने पर डॉ० राय को बहुत क्रोध भी आया और धक्का भी लगा। वस्तुतः बात भी ऐसी थी कि उन दिनों भारतीयों को कोई उच्च पद प्राप्त करना बहुत कठिन था और यदि दो-चार भारतीयों को उच्च पद प्राप्त हो भी जाते थे, तो उन्हें उस पद पर कार्य करनेवाले अंग्रेज अधिकारियों से वेतन बहुत कम मिलता था।

उन दिनों शिक्षा-विभाग का दफ्तर दार्जिलिंग में था। डॉ० राय वह पत्र प्राप्त करके सीधे दार्जिलिंग गए। उन्होंने शिक्षा

विभाग के डायरेक्टर श्री क्रोफ्ट से शिकायत की कि उन्हें जिस पद पर नियुक्त किया जा रहा है, वह आई० सी० एस० श्रेणी का है। यदि किसी अंग्रेज को इस पद पर नियुक्त किया जाता, तो उसे यात्रा-भत्ते के अतिरिक्त दो-तीन गुना अधिक वेतन भी दिया जाता। फिर मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों किया जा रहा है ?

एक हिन्दुस्तानी नौजवान, जो नौकरी प्राप्त करने के लिए आया हो, के मुंह से ऐसी बात सुनकर अंग्रेज अधिकारी आग बबूला हो उठा। वह बोला, "मैं इस नौकरी के लिए तुम्हें मजबूर तो नहीं कर रहा ? क्या ज़िन्दगी बिताने के लिए कोई और रास्ता नहीं ? तुम यदि इतने बड़े रसायन-विज्ञान के पण्डित हो तो अपना कारोबार क्यों नहीं शुरू कर लेते ?"

डॉ० राय इस अपमान और ताने का कड़वा घूंट पीकर रह गए। उन्होंने मन-ही-मन अंग्रेज अधिकारी के इस कटु ताने का उत्तर देने का निश्चय कर लिया।

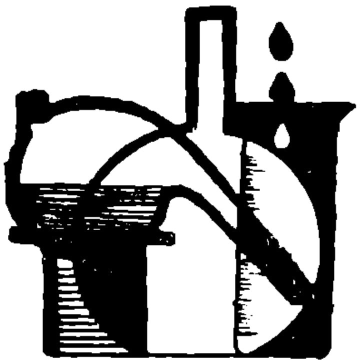
संस्कृत के महान् पण्डित वाल्मीकि को भी किसी ने इसी प्रकार का ताना दिया था कि क्या तुम्हारे इस पापकर्म में सम्बन्धी तुम्हारा साथ देंगे ?—और जब उनकी आंख खुली तो उनका जीवन बदल चुका था।

इसी प्रकार तुलसीदास अपनी पत्नी के प्रेम में इतने दीवाने थे कि वह कुछ घण्टों का विछोह भी सहन नहीं कर पाए और आंधी-तूफान की रात में अपनी ससुराल जा पहुंचे। तब पत्नी ने जो ताना दिया, तो उनकी जीवन-धारा राम-प्रेम में बदल गई।

राजकुमारी विद्योत्तमा से जब कालिदास का विवाह हुआ, तब वह नितान्त मूर्ख था। विद्योत्तमा के एक ताने ने ही उन्हें संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में ला खड़ा कर दिया।

ताने की इसी कसक ने समय आने पर 'बंगाल केमिकल एण्ड फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स' तथा अनेक अन्य कम्पनियों की स्थापना डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय द्वारा करवाई।

किसी वैज्ञानिक के अनुसंधान-कार्य के लिए प्रयोगशाला बहुत आवश्यक होती है। डॉ० राय के पास उस समय न इतने साधन थे कि वे अपनी प्रयोगशाला बना पाएं और न इतना धन, जिससे कोई कारोबार खड़ा किया जा सके। प्रेसीडेन्सी कॉलेज की अढ़ाई सौ रुपए की इस नौकरी में केवल एक ही लाभ था—और वह था प्रयोगशाला के उपयोग का। प्रेसीडेन्सी कॉलेज में तब तक लेबोरेटरी बहुत बढ़िया बन चुकी थी। डॉ० राय ने बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण कदम उठाकर रसायन-विज्ञान के सहायक अध्यापक की यह नौकरी स्वीकार कर ली और काम पर जाने लगे।



आखिर पा गया

जो मनुष्य कोई कार्य करता है और उसमें उसे सफलता प्राप्त होती है, तो वह कितना प्रसन्न होता है। वैज्ञानिक खोजें तो एक नई सृष्टि के निर्माण में सहायक होती हैं। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। विज्ञान के जिन आविष्कारों को आज हम कोई महत्त्व नहीं देते यदि उनकी खोज करनेवालों के प्रयत्न और समय का अनुमान लगाया जाय, तब आपको उनके कार्य की महत्ता का ज्ञान होगा। बिजली, रेडियो, टेलीफोन, बेतार के तार आदि आविष्कारों ने मनुष्य के जीवन को ही बदल दिया है। आज ये चीजें सर्वसाधारण को सुलभ हैं, जबकि किसी समय बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को भी यह प्राप्त नहीं थीं।

क्या आप जानते हैं कि जब कोई वैज्ञानिक किसी विषय पर परीक्षण व खोज प्रारम्भ करता है और वर्षों अपना बहुमूल्य समय और शक्ति उसमें खपा देता है और उसके बाद जब उसे सफलता प्राप्त होती है, तब उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं होता।

'यूरेका', 'यूरेका' अर्थात् पा गया, पा गया, विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए एक सामान्य परिचित शब्द है।

डॉ० राय रसायन-विज्ञान के पण्डित थे। वह जानते थे कि मनुष्य के जीवन के लिए रसायन कितना महत्त्वपूर्ण है। इसी के सहारे अनेक प्रकार की जीवन देने वाली दवाइयों का आविष्कार

हुआ और मनुष्य ने अनेक रोगों पर विजय प्राप्त की।

बात 1895 की है। डॉ० जगदीशचन्द्र बसु ने इसी साल बिजली की अदृश्य किरणों पर खोज करके बेतार के तार की प्रारम्भिक स्थिति का पता लगाया था। डॉ० राय भी इस परीक्षण के समय मौजूद थे। इसी वर्ष डॉ० राय ने पारे और तेजाब पर प्रयोग करते हुए नाइट्रेट की खोज करके संसार-भर के रसायन-शास्त्रियों को आश्चर्य में डाल दिया था।

डॉ० राय एक दिन अपनी प्रयोगशाला में बैठे थे। उन्होंने पारे और तेजाब पर परीक्षण प्रारम्भ किया। इनके प्रयोग से मरक्यूरस नाइट्रेट नामक पदार्थ बनता है, परन्तु उन्हें उसमें कुछ पीले-पीले कण दिखाई दिए।

अभी तक किसी ने इन पीले कणों के सम्बन्ध में न खोज की थी और न कुछ बताया था।

डॉ० राय ने जब इन पीले कणों की परीक्षा की तो पता लगा कि वह पीले कण लवण भी हैं और नाइट्रेट भी। अभी तक इस पदार्थ का आविष्कार नहीं हुआ था, उसके गुणों का ज्ञान होना तो दूर की बात थी।

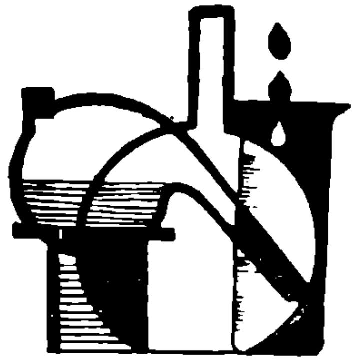
डॉ० राय की इस खोज का समाचार विभिन्न समाचार पत्रों में छपा, तो उन्हें चारों ओर से बधाई के सन्देश मिलने लगे। देश के ही नहीं, विदेश के भी वैज्ञानिकों और विज्ञान सम्बन्धी पत्रिकाओं ने उनकी इस खोज की प्रशंसा की। विदेशी वैज्ञानिकों को यह पता लगा कि अब भारत भी रसायन-विज्ञान के क्षेत्र में किसी से पीछे न रहकर बहुत आगे बढ़ जाएगा।

पारे और तेजाब के संयोग से बनने वाले इस नए पदार्थ की खोज के बाद डॉ० राय ने 80 और नये विभिन्न पदार्थों के मेल से बने यौगिकों की खोज की। डॉ० राय ने अमोनिया, जिंक, कैडमियम, कैलसियम, बेरियम, मैग्नेशियम आदि धातुओं के नाइट्राइट्स के सम्बन्ध में भी बहुत महत्त्वपूर्ण खोज कार्य किया। उन्होंने अमाइन नाइट्रेट को विशुद्ध रूप में तैयार करके उसके

रसायन और भौतिक गुणों का पूर्ण विवरण भी दिया।

डॉ० राय ने गन्धक, पारा, प्लैटिनम आदि से बनने वाले अम्लों के यौगिकों पर विशेष खोज की। उन्होंने पारा, गन्धक और आयोडिन के संयोग से एक नये पदार्थ का निर्माण किया।

डॉ० राय की एक विशेषता यह थी कि वे अनेक शोध-कार्य विद्यार्थियों से भी करवाते थे। इस प्रकार की उनकी अनेक महत्त्व-पूर्ण खोजों का पूरा ब्यौरा प्रेसीडेन्सी कॉलेज की एक पुस्तक में प्रकाशित किया गया। देश-विदेश के वैज्ञानिकों को डॉ० राय की इन खोजों के सम्बन्ध में जब पता चला तो उनका सम्मान बहुत अधिक बढ़ गया और उनकी गिनती संसार के महान रसायन वैज्ञानिकों में होने लगी।



हड्डियों की मुसीबत

डॉ० राय जब इंग्लैंड में थे, तो वह वहां के अनेक कारखानों में जाकर वहां के संबंध में ज्ञान प्राप्त करते रहते थे। वह यह देखते थे कि वहां अनेक प्रकार के पदार्थों का किस प्रकार निर्माण किया जाता है, परंतु उनसे यह बात सदा गुप्त रखी जाती थी कि इतनी बड़ी तादाद में विभिन्न पदार्थों अथवा दवाइयों का निर्माण कैसे होता है।

भारतीय जानते हैं कि उन दिनों भारत में प्राप्त होने वाला बहुत-सा कच्चा माल जहाजों में भरकर विदेश भेजा जाता था और वहां उसी से बढ़िया चीजें बनाकर बहुत ऊंचे दामों पर पुन: भारत में बेची जाती थीं। यह बात जानते तो अनेक भारतीय थे, परंतु अपना काम-धंधा शुरू करने की प्रेरणा बहुत कम लोगों में पैदा होती थी।

डॉ० राय अक्सर सोचा करते थे कि भारत के पढ़े-लिखे नवयुवक, जिनके पास साधन भी हैं, सदैव नौकरी के पीछे क्यों पड़े रहा करते हैं?

डॉ० राय ने अब तक घर में भी एक प्रयोगशाला बना ली थी और कुछ चीजों का निर्माण करने की चिंता में पड़े थे। उन दिनों मरे हुए पशुओं की हड्डियां तक विदेश भेजी जाती थीं और वहां से सुपरफासफेट ऑफ कैलशियम आदि दवाएं बनकर ऊंचे दामों पर भारत में बिकती थीं, जिनका अनेक रोगों में प्रयोग होता

था।

डॉ० राय ने निश्चय किया कि फासफेट ऑफ कैलशियम बनाया जाय और उसके निर्माण की सरल विधि निकाली जाय।

उन्होंने मरे हुए जानवरों की बहुत-सी हड्डियां इकट्ठी करवाईं और उन्हें सूखने के लिए अपने घर की छत पर डाल दिया।

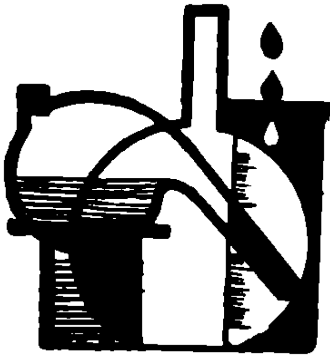
होनी को कौन टाल सकता है ? हड्डियां पूरी तरह सूखी न थीं कि एक दिन बारिश हो गई और उनमें चिपटे हुए थोड़े-बहुत मांस के टुकड़ों में बदबू आने लगी। चील-कौए इकट्ठे हुए और छोटी-मोटी हड्डियां लेकर इधर-इधर बिखेरने लगे। मुहल्ला हिंदुओं का था। बहुत से लोगों के घरों में हड्डियां गिरीं, तो वे शिकायत करने डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय के पास पहुंचे। कुछ ने तो उन्हें यहां तक धमकी दी कि फौरन हड्डियां फिंकवाई न गईं, तो इसकी सूचना वे पुलिस को देंगे।

संयोग से उस मुहल्ले से थोड़ी दूर एक खाली मैदान पड़ा था। डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय ने अपने मित्रों की सहायता से हड्डियां वहां इकट्ठी कीं और उनमें आग लगा दी। हड्डियां जब जलने लगीं तो उनसे वैसी बदबू उठने लगी, जैसे लाश को जलाते समय उठती है।

अब क्या था, पुलिस आ पहुंची। पुलिस ने समझा कि इन लोगों ने किसी का खून कर दिया है और उसकी लाश जलाई जा रही है। जब पुलिस को समझाया गया और एक लंबे बांस द्वारा उन हड्डियों को उलट-पुलट करके दिखाया गया, तो उसकी तसल्ली हुई, नहीं तो न जाने क्या मुसीबत पैदा हो जाती ?

डॉ० राय की आदत थी कि जब वह क्लास में पढ़ाते थे और प्रयोग करके दिखाते थे, तो बहुत-सी खाई जाने वाली चीजें वह स्वयं चखकर दिखाया करते थे। जैसा कि हमने अभी बताया, हड्डियों को जलाने से कैलशियम नामक रासायनिक पदार्थ बनता है। डॉ० राय बताया करते थे कि हड्डियों के जलने से उनकी सारी अपवित्रता नष्ट हो जाती है और एक नये पदार्थ का जन्म होता

है । विद्यार्थियों को संतोष और तसल्ली दिलाने के लिए ऐसे कुछ पदार्थ नमूने के तौर पर वह अपनी मेज पर रखा करते थे और उनका एकाध टुकड़ा मुंह में डालकर चबाते रहते थे । वह कहा करते थे कि फासफेट ऑफ कैलशियम से दिमागी ताकत बढ़ती है । कुछ विद्यार्थी तो उनके कहने पर उसे थोड़ा-सा चख भी लेते, परंतु बहुत से विद्यार्थी धर्म-संकट में पड़ने के भय से उसे छूते तक न थे ।



बगाल कैमिकल और अन्य कारखाने

डॉ० राय केवल वैज्ञानिक ही न थे, बहुत बड़े देशभक्त भी थे। उन्होंने देखा कि अधिकांश भारतीयों का ध्यान उद्योग-धंधों की ओर नहीं जाता। जब उन्होंने बंगाल कैमिकल वर्क्स आदि की विशाल पैमाने पर स्थापना की बात की तो लोगों ने उन्हें डराया कि हिंदुस्तानी लोग विदेशी चीजें अधिक सुविधा से खरीदते हैं और भारतीय वस्तुएं अच्छी होने पर भी खरीदने में आनाकानी करते हैं, भले ही उनकी कीमत कम क्यों न हो? यह सोचकर डॉ० राय ने स्वदेशी-आंदोलन चलाने का निर्णय किया। इस आंदोलन का मुख्य ध्येय यह भी था कि देश में ही विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधों का विकास हो और कच्चा माल कौड़ियों के दाम विदेश न जाय। उनका विश्वास था कि विदेशी चीजें खरीदने से जो धन विदेश जाता है, यदि उसके जरिये स्वदेशी वस्तुएं खरीदी जाएंगी, तो धन भारत में ही रहेगा और उससे भारतीय उद्योग-धंधे बढ़ाने में मदद मिलेगी।

उन दिनों विदेशी माल के बायकाट का नारा हर भारतीय देशभक्त का नारा था। आगे चलकर तो इस आंदोलन ने बहुत उग्र रूप धारण किया और देशभक्त भारतीयों ने बहुमूल्य विदेशी सामानों की होलियां जलाईं।

डॉ० राय ने ऐसी चीजें बनाने का फैसला किया जिनकी बाजार में मांग भी बहुत रहती है और बिक भी बहुत जल्दी जाती

हैं। यह थीं अनेक प्रकार की रासायनिक वस्तुएं।

जब मनुष्य कोई निश्चय करके आगे बढ़ता है, तो स्वयं राह भी बनती जाती है। डॉ० राय को भी अपने इस कार्य के लिए कुछ अच्छे साथी मिल गये। कुछ मित्रों ने उनकी सहायता भी की और कुछ व्यापारियों ने उनके कार्य में हाथ भी बंटाया।

डॉ० राय ने अपने घर पर जो छोटा-सा कारखाना बनाया था, अब वह धीरे-धीरे फल-फूल रहा था। उसके लिए उन्हें बड़ा स्थान लेना पड़ा और इस प्रकार 'बंगाल कैमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स' की स्थापना हुई।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, डॉ० राय वैज्ञानिक होने के साथ-साथ महान देशभक्त भी थे। इतना ही नहीं, वह अनेक स्वदेशी उद्योग-धंधों के प्रारंभ करनेवाले भी थे। उन्होंने नये उद्योग-धंधों का प्रारंभ किया।

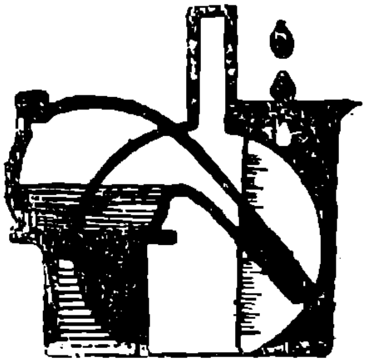
सौदेपुर नामक स्थान पर गंधक का तेजाब बनाने का कारखाना लगाया।

चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने का कारखाना 'कलकत्ता पॉटरी वर्क्स' के नाम से 1901 में स्थापित किया।

तामचीनी की चीजें बनाने का कारखाना 'बंगाल इनैमल वर्क्स' के नाम से 1921 में स्थापित किया।

इसी प्रकार 1905 में एक जहाजरानी कंपनी की स्थापना भी की, जिसका नाम था 'बंगाल स्टीम नैवीगेशन कंपनी'।

आप यह तो जानते ही हैं कि कोई भी नया कार्य करने में कठिनाइयां आती हैं। बहुत से लोग कठिनाइयों के भय से काम आरंभ ही नहीं करते। दूसरे नंबर के लोग कार्य आरंभ तो कर देते हैं, परंतु विघ्नों और कठिनाइयों से घबड़ाकर काम को बीच में ही छोड़ देते हैं! परंतु श्रेष्ठ व्यक्ति वह होते हैं, जो एक बार काम प्रारंभ करके अनेक कठिनाइयों के आने पर भी उसे बीच में नहीं छोड़ते, उसे पूर्ण करके ही दिखाते हैं। ऐसे व्यक्ति ही सफलता के शिखर पर पहुंचते हैं।



रसायन-विज्ञानी

डॉ० राय आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के संबंध में कुछ ज्ञान रखते थे। उन्हें पता था कि वैद्य लोग धातुओं से भस्में आदि तैयार करते हैं। जड़ी-बूटियां, सीप-घोंघों आदि से भी भस्में बनायी जाती हैं और विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों के रसों से उन्हें तैयार किया जाता है। वह जानते थे कि जड़ी-बूटियों और धातुओं के रूप परिवर्तन की यह क्रिया रासायनिक परिवर्तन कहलाती है।

उनके मन में यह जानने की जिज्ञासा पैदा हुई कि क्या भारतीय रसायन-विज्ञान से परिचित थे? उन्होंने यह जानना चाहा कि भारतीय किस स्थिति तक रसायन-विज्ञान का ज्ञान रखते थे? उन्होंने आयुर्वेद से संबंधित अनेक संस्कृत की पुस्तकें पढ़ीं, तो उन्हें यह जानकर संतोष हुआ कि भारत में प्राचीन काल से रसायन-विज्ञान चला आ रहा है।

उन्हीं दिनों फ्रांस के एक महान् रसायन-शास्त्री ने रसायन-विज्ञान के इतिहास पर खोज का काम आरंभ किया था, परंतु उसमें अरब देशों की रसायन-विज्ञान की अधिक चर्चा थी। डॉ० राय ने उन महाशय को पत्र लिखा और उनसे कहा कि भारतीय रसायन-विज्ञान के संबंध में और अधिक ज्ञान जुटाने की आवश्यकता है। अन्ततः यह कार्य डॉ० राय को स्वयं करना पड़ा। डॉ० राय ने खोजकर 'हिन्दू रसायन-विज्ञान का इतिहास' नामक

एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी। विश्व के रसायन-शास्त्रियों को जब इस पुस्तक का पता चला, तो उन्होंने इसकी प्रशंसा की। डॉ० राय का यह कार्य रसायन-विज्ञान के लिए एक अद्भुत देन ही नहीं था, वरन् उससे भारत के ज्ञान-विज्ञान के संबंध में लोगों को परिचय भी मिला। भारतीयों का मस्तक भी ऊंचा हुआ। संसार को इस बात का ज्ञान हो गया कि प्राचीन काल में भारत साहित्य, संगीत, गणित आदि के साथ-साथ रसायन-विद्या का भी गुरु रहा है।

फ्रांस के डॉ० बर्थोले ने डॉ० राय के इस कार्य के संबंध में वहां की एक प्रसिद्ध पत्रिका में एक लंबा-चौड़ा लेख लिखा और इस कार्य के लिए डॉ० राय को धन्यवाद दिया। डॉ० राय के इस कार्य से भारतीय वैज्ञानिक, विशेष रूप से रसायन-विज्ञान का अध्ययन करनेवाले छात्रों में भारतीय विज्ञान के प्रति आदर की भावना उत्पन्न हुई।

डॉ० राय सदा इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते थे कि भारतीय रसायन-विज्ञान का अध्ययन करनेवाले छात्रों का सम्मान बढ़े। 1912 में ब्रिटिश साम्राज्य के सभी विश्वविद्यालयों का पहला सम्मेलन लंदन में हुआ। इसमें कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से डॉ० राय और प्रो० देवप्रसाद सर्वाधिकारी ने भाग लिया था। डॉ० राय ने इस सम्मेलन में बड़े गर्व के साथ भारतीय विद्यार्थियों की सफलताओं का उल्लेख किया और यह जोरदार मांग की कि ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों में भारतीय विद्यार्थियों को उचित सम्मान और सुविधा दी जाय। उन्हें केवल इसलिए तुच्छ न समझा जाय कि वे पराधीन देश के छात्र हैं।

डॉ० राय के इस प्रकार के स्पष्ट भाषणों से विदेशी वैज्ञानिकों में उनका सम्मान बढ़ा और उन्हें स्थान-स्थान पर भाषणों आदि के लिए बुलाया जाने लगा। अनेक स्थानों पर उनका सम्मान भी किया गया।

यह बात तो ब्रिटेन की थी, परंतु भारत में अंग्रेज उच्च अधिकारियों पर उनकी इस अपील का कोई असर नहीं हुआ।

केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय, अनेक कठिनाइयों के बावजूद भारतीय वैज्ञानिकों का अधिकाधिक सम्मान करने लगा और भारतीय छात्रों को अधिकाधिक सुविधायें दी जाने लगीं। इसका कारण यही था कि वहां डॉ० राय और जगदीशचन्द्र बसु जैसे देशभक्त और योग्य वैज्ञानिक अध्यापक थे।

विश्वविद्यालयों के इस सम्मेलन के बाद जब वे भारत लौटे तो उनके सम्मान में प्रेसीडेंसी कॉलेज में भोज दिया गया। उन दिनों वहां के प्रिंसिपल डॉ० जेम्स नामक एक सहृदय अंग्रेज अधिकारी थे। उन्होंने डॉ० राय के संबंध में भाषण करते हुए उनकी चार विशेषतायें बतलाईं।

पहली—डॉ० राय की रासायनिक खोजें। इनके आधार पर उन्होंने वैज्ञानिकों में सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया था।

दो—हिंदू रसायन-विज्ञान का इतिहास।

उनकी तीसरी सफलता थी 'बंगाल कैमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स' की स्थापना। डॉ० जेम्स ने कहा था कि भारत, विशेषत: बंगाल के लिए आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यहां का औद्योगिक विकास है। डॉ० जेम्स ने कहा कि डॉ० राय व्यापारी न होकर वैज्ञानिक हैं। परंतु जिस कार्य में व्यापारी असफल रहे हैं, वह कार्य डॉ० राय ने कर दिखाया।

डॉ० राय की चौथी विशेषता का जिक्र करते हुए उन्होंने इसे सबसे बड़ी सफलता बताया था। वह था युवा रसायन-शास्त्रियों को अपनी प्रयोगशाला में प्रोत्साहन देना और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना।

क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि डॉ० राय को विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ उद्योग-धंधों की स्थापना के लिए प्रेरणा किससे प्राप्त हुई—जबकि उस समय विदेशी सरकार भारतीयों के प्रत्येक कार्य में रोड़ा अटकाती थी।

फिर कौन-सी ऐसी शक्ति थी कि डॉ० राय स्वास्थ्य ठीक न रहने पर भी इतना कार्य कर सकते थे? इसका एकमात्र कारण था—उनकी लगन, समय का सदुपयोग और देशभक्ति की भावना।



अग्रणी देशभक्त

क्या आप जानते हैं कि देशभक्ति किसे कहते हैं ?

देश पहाड़ों, नदियों, नालों, खेतों, गांवों और नगरों से मिलकर बनता है। क्या आप समझते हैं कि इनसे प्रेम करना ही देशभक्ति है ? देशभक्ति का अर्थ है देश में रहने वाले निवासियों से, वहां की जनता से प्रेम करना, उन्हें आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करना, देश में उद्योग-धंधों की स्थापना करना, आदि।

परंतु क्या आप समझते हैं कि क्या देशभक्ति कोई ऐसी चीज है जो किसी देश के आजाद हो जाने के बाद आवश्यक नहीं रह जाती ?

नहीं, ऐसी बात नहीं।

देशभक्ति तब तक कायम रहनी चाहिए, जब तक देश है, देश के वासी हैं।

जैसा कि आप जानते हैं, डॉ० राय ने इंग्लैंड से पढ़ाई समाप्त करने के बाद स्वदेश पहुंचते ही खादी की धोती और कुर्त्ता धारण कर लिया था। उन्होंने मिल के कपड़ों का भी त्याग कर दिया था और वह अन्त तक अपने मन-ही-मन किये इस प्रण पर अडिग रहे।

ऐसा उन्होंने क्यों किया ?

उन्होंने देखा कि भारत का कच्चा माल इंग्लैंड से लौटने पर कई गुना अधिक कीमत में भारत के बाजारों में बिकता है और

भारत का कारीगर दिनोंदिन बेकार और असहाय हो जाता है। देखा जाय तो डॉ० राय के प्रत्येक कार्य के पीछे यही देशभक्तिपूर्ण भावना थी।

उन दिनों भारत में स्वतंत्रता-आंदोलन की लहर प्रारंभ हो चुकी थी। सरकारी अधिकारी तो क्या, सामान्य व्यक्ति भी स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लेनेवाले और क्रांतिकारियों से मिलने से कतराते थे। डॉ० राय सरकारी कॉलेज में प्रोफेसर थे, परंतु उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ लड़नेवालों से सहयोग करने में कभी किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

बात सन् 1901 की है। बंबई के एक कॉलेज के एक अध्यापक, जिनका नाम गोपालकृष्ण गोखले था, कलकत्ता आए। गोपालकृष्ण गोखले भारत की स्वतंत्रता के हामी थे और दोनों अध्यापक भी थे। इसीलिए डॉ० राय और गोखले में मित्रता होते देर न लगी।

1901 के अन्त में एक और महान् व्यक्ति भारत आया। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर अंग्रेज अधिकारियों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों का उसने डटकर मुकाबला किया था। भारत में सभी उसके नाम से परिचित थे। क्या आप बता सकते हैं कि वह कौन व्यक्ति था ?

वह व्यक्ति था मोहनदास कर्मचन्द गांधी।

गांधी जी 1901 के अन्त में कलकत्ता आये। प्रोफेसर गोखले ने गांधी जी को डॉ० राय से मिलाया। गांधी जी देखते ही उनसे बहुत प्रभावित हुए, क्योंकि उनका जीवन भी गांधी जी के समान सादगी से पूर्ण था और रहन-सहन भी बिलकुल सीधे-सादे देहाती जैसा था।

डॉ० राय ने बंगाल के लोगों को गांधी जी के कार्यों से परिचित कराने के लिए 1902 में पहली सभा का आयोजन किया।

गांधी जी और डॉ० राय के आदर्शों में अत्यधिक समानता थी इसलिए दोनों में प्रेमपूर्ण निकट संबंध स्थापित होने में देर न

लगी।

डॉ० राय के जीवन को देखने से अनेक बार ऐसा भ्रम-सा होने लगता है कि वह पहले देशभक्त थे या वैज्ञानिक, क्योंकि उन्होंने दोनों चीजों को इस प्रकार मिला दिया था कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता था।

वैज्ञानिक लोग प्राय: अपनी प्रयोगशालाओं में बंद पड़े रहते हैं परंतु डॉ० राय ने अपनी प्रयोगशाला के द्वार भारतीय युवा वैज्ञानिकों के लिए खोल रखे थे। उनका जो कार्य होता था, देश-भक्ति के आदर्श से प्रेरित होता था।

उन्होंने उद्योग-धंधों की स्थापना की। इसके पीछे भी उनकी यही भावना थी कि भारतीय लोग दूसरों के आश्रित न रहकर अपने लिए वस्तुओं का स्वयं उत्पादन करें, जिससे रोजगार भी बढ़े और देश का धन भी देश में ही रहे।

'विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है, स्वराज्य नहीं।'

क्या कोई कल्पना कर सकता है कि यह शब्द किसी वैज्ञानिक के होंगे?

यह बात डॉ० राय ने उस समय कही थी जब देश में असहयोग-आंदोलन जोर पकड़ रहा था।

यह बात प्रथम विश्व-युद्ध के बाद की है। अंग्रेजों ने प्रथम विश्व-युद्ध में देश के नेताओं से सलाह किये बिना भारतीय सेनाओं का उपयोग किया था। भारतीयों ने इस बात का जब विरोध किया तो अंग्रेजों ने वायदा किया था कि वे इस सेवा के बदले विश्व-युद्ध के बाद देश को स्वतंत्र कर देंगे, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसके बदले उन्होंने रौलट ऐक्ट नामक एक नया कानून लागू किया। इस कानून के अधीन किसी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये गिरफ्तार किया जा सकता था और जब तक अधिकारी चाहें, उसे जेल में रखा जा सकता था।

इसके विरोध में देश भर में सभाएं हुई और जनता ने क्रोध प्रकट किया। परंतु अंग्रेजों ने भयंकर अत्याचारों द्वारा इस

विरोध को दबाने का प्रयत्न किया।

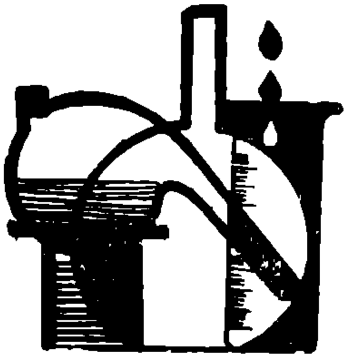
उन दिनों कलकत्ता में देशबंधु चित्तरंजन दास नाम के एक महान् नेता थे। उन्होंने इस रौलट ऐक्ट के खिलाफ एक सभा बुलाई थी। अपार भीड़ थी। लोगों में भारी जोश था। डॉ० राय पीछे खड़े सभा की कार्रवाई देख रहे थे। लोगों ने उन्हें पहचान लिया और उन्हें मंच पर ले गए। श्री दास ने डॉ० राय से भाषण देने का अनुरोध किया। डॉ० राय खड़े हुए। जनता ने पूरे जोश के साथ 'वन्दे मातरम्' के नारों से धरती और आकाश को गुंजाकर डॉ० राय का सम्मान किया।

डॉ० राय ने उस समय कहा था—विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता है, स्वराज्य नहीं। वैसे तो मैं रसायनशाला का जीव हूं, परंतु ऐसे अवसर भी आते हैं जब वक्त की पुकार सुनकर टेस्ट-ट्यूब छोड़कर देश की पुकार का साथ देना पड़ता है।"

डॉ० राय के इस प्रकार के कार्यों से सिद्ध हो जाता है कि वह जितने महान् वैज्ञानिक थे, देशभक्त भी उससे कम नहीं थे।

इस सभा के पश्चात् देशबंधु चित्तरंजन दास को गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय उन्होंने उनकी पत्नी को धैर्य बंधाते हुए जो पत्र लिखा था, उससे यह संदेह पूर्णतया समाप्त हो जाता है कि उन्हें स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने वालों से मिलने या उनका सहयोग करने में किसी प्रकार का भय अनुभव नहीं होता था।

उन्होंने पत्र में लिखा था—"आप हंसते-हंसते जो कष्ट सहन कर रही हैं, उससे राजपूती गौरव के दिनों की याद आती है। मातृभूमि पर छाये हुए संकट के बादल छंट जाएंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि अपने विज्ञान की सेवा करते हुए मेरे मन में एक ही प्रकार का विचार रहता है कि मैं उसके द्वारा देश की सेवा कर सकूं। भगवान जानता है कि जीवन में मेरा कोई और दूसरा उद्देश्य नहीं है।"



भारत के संकटों की कहानी

भारत एक गरीब देश है। जिन दिनों की यह बात है, उन दिनों भारत पराधीन भी था। बंगाल आदि कुछ स्थानों पर प्रायः अकाल पड़ते थे और बाढ़ें आती थीं। बाढ़ों में भी अनेक व्यक्ति, ढोर और पशु बहकर मरते और बेशुमार लोग बेघर-बार हो जाते। अकाल के दिनों की कहानी उससे भी भयंकर थी। निर्धनता आज भी है, परंतु अंग्रेजों के जमाने के अकालों का-सा दृश्य आज देखने को नहीं मिलता।

आपने कौरव-पांडवों की कहानी पढ़ी होगी। इन दोनों के गुरु थे द्रोणाचार्य। गुरु-पद संभालने से पहले द्रोणाचार्य बहुत निर्धन थे। उनका एक बेटा था—अश्वत्थामा। बेटा जब दूध मांगता तब गुरु-पत्नी पानी में आटा घोलकर पिला देती।

सुदामा की कहानी भी आप जानते होंगे। वह अपने मित्र कृष्ण को भेंट करने के लिए एक मुट्ठी चावल ले गया था।

इन दोनों घटनाओं में निर्धनता की झलक तो अवश्य है, परंतु आटा और चावल होने से यह पता नहीं चलता है कि उन दिनों भूखे व्यक्ति कोई ऐसी चीज खाते हों, जो खाने के योग्य न हो, परंतु अंग्रेजों के समय भारत में पड़े हुए अकालों की कहानियां पढ़कर हृदय दुख से भर जाता है और विदेशी राज्य की निर्लज्जतापूर्ण हरकतों से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

डॉ० राय 1921 में चौथी बार इंग्लैंड की यात्रा से लौटे।

कलकत्ता पहुंचते ही उन्हें समाचार मिला कि खुलना जिले में अकाल पड़ा है। वह गर्मियों की छुट्टियों में कुछ दिन के लिए अपने गांव जाया करते थे। जब वे वहां पहुंचे और उन्होंने वहां की हालत देखी तो दुख और क्रोध के मारे कांपने लगे।

सरकार इतना भयंकर अकाल पड़ने पर भी कह रही थी कि खुलना जिले के किसी भी गांव में दूध, अनाज, फल और मछली आदि की कोई कमी नहीं।

हो सकता है किसी चीज की कमी न हो, परंतु जिन लोगों के पास कोई रोजगार ही न होगा और आवश्यक चीजें खरीदने के लिए पैसा नहीं होगा, वहां उन चीजों का होना-न-होना बराबर है।

उस समय के सरकारी अधिकारी को इस बात की चिंता न थी कि कौन मरता है, कौन जीता है? वह तो अपने उच्च अधिकारियों को बढ़िया रिपोर्ट बनाकर भेज देते थे, जिससे उनके आका प्रसन्न रहें। वे शिमला और दार्जिलिंग की ठंडी हवाएं खाते हुए उन रिपोर्टों पर पूरा भरोसा कर लेते थे और स्वयं किसी प्रकार की छानबीन करने का कोई प्रयत्न नहीं करते थे।

डॉ० राय तथा बंगाल के अन्य देशभक्तों ने सरकार को नींद से जगाने के लिए अखबारों में शोरगुल मचाया, परंतु उससे सरकार की नींद टूटने वाली न थी। उन्होंने देश की जनता से अकालपीड़ितों की सहायता के लिए अपील की और चारों ओर से हर प्रकार की सहायता पहुंचने लगी।

अकाल के अतिरिक्त उन दिनों बाढ़ें प्रायः आया करती थीं।

बाढ़ें तो कभी-कभी आज भी आती हैं, परंतु बहुत-सी नदियों पर बांध आदि बन जाने से उनका प्रकोप बहुत घट गया है। परंतु अंग्रेजों के जमाने में बाढ़, अकाल और महामारी प्रायः प्रतिदिन का काम था।

आइयें, आपको एक बाढ़ की दुर्दशा का हाल सुनाएं।

डॉ० राय ने बाढ़-पीड़ित व्यक्तियों की सहायता के लिए

अनेक स्थानों पर केंद्र खोले, जहां से बाढ़-पीड़ितों को खाना, कपड़ा आदि दिया जाने लगा। परंतु कुछ स्थान ऐसे भी थे जहां से बाढ़ में घिरे हुए लोग निकल नहीं सकते थे।

इस बाढ़ में, जिसका हम यहां जिक्र कर रहे हैं, पांच लाख से अधिक जनता बेघर-बार और बर्बाद हुई। आठ-दस करोड़ रुपये का नुकसान हुआ सो अलग। किसानों के मवेशी बह गये, घास-फूस की झोंपड़ियां बर्बाद हो गईं और फसलें पूरी तरह से चौपट। उस पर मरे हुए जहां-तहां पड़े पशुओं की बू से भयंकर महामारी फैलने का खतरा पैदा हो गया।

कलकत्ता के लोगों ने मिलकर एक सहायता समिति बनाई और उसके अध्यक्ष बनाये गए डॉ० राय। कलकत्ता विश्व-विद्यालय का साइंस कॉलेज सहायता के लिए केंद्र नियत किया गया। डॉ० राय उन दिनों यहीं प्राध्यापक थे। सुभाषचन्द्र बोस, मेघनाद साहा आदि उनके शिष्य थे। अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए अपील की गई। देश-भर के लोगों ने उसमें सहायता दी।

सितंबर, 1931 में फिर भयंकर बाढ़ आई। इस बार भी सहायता समिति के अध्यक्ष डॉ० राय ही थे। इस बार स्वयंसेवकों ने गांव-गांव जाकर लोगों की सहायता की।

एक दिन की बात है कि कुछ स्वयंसेवक सहायता कार्य करते हुए एक झोंपड़ी में घुसे, तो उन्हें कोने में रखी गन्ने जैसी कोई चीज दिखाई दी। पूछने पर पता लगा कि यह गन्ना नहीं, वरन् नकली गन्ना है। केले के पेड़ को छीलकर उसके बीच का हिस्सा निकालकर रखा गया है और जब कोई बच्चा भूख से रोता-चिल्लाता है, तो उसे इस नकली गन्ने की एक गण्डेरी काटकर दे दी जाती है जिसे वह मुंह में रखकर वह चबाने लगता है और उसी के रस को गन्ने का रस समझते हुए रोते-रोते सो जाता है।

वे स्वयंसेवक उस नकली गन्ने के चूसे हुए कुछ टुकड़े कलकत्ता ले आए और उन्होंने अंग्रेजों के हाथों देश की दुर्दशा

लोगों को दिखाई।

एक बार ये स्वयंसेवक एक और घर में घुसे तो उन्होंने देखा कि एक बच्चा झोपड़ी के कोने में बैठा हुआ कुछ चबा रहा है और दूसरे बच्चे उससे छीना-झपटी का यत्न कर रहे हैं। स्वयं-सेवकों द्वारा पूछने पर पता चला कि पिता कहीं से एक जंगली पौधे की जड़ लाये थे और उसी को साफ कर उबालने के बाद खाकर बच्चे पेट भरने का यत्न कर रहे हैं, परंतु उसमें भी कमी पड़ गई है।

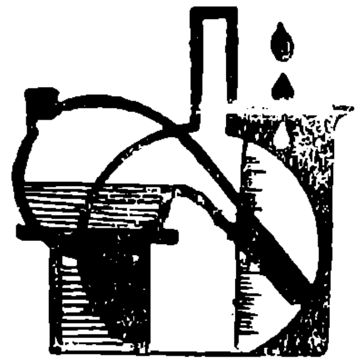
इतना ही नहीं, बाढ़ और अकाल के दिनों कितने ही माता-पिताओं ने अपने बच्चों को अनाथ छोड़ दिया और अनेक ने मुट्ठी-भर अनाज के बदले अपने बच्चों को बेच दिया।

ऐसी थी हमारे देश की उन दिनों की दुर्दशा।

डॉ० राय ने बंगाल के नवयुवकों को बतलाया कि यह विदेशी सरकार किसानों का शोषण करने पर लगी है। डॉ० राय का यह संदेश बंगाल के नवयुवकों ने देश के कोने-कोने में पहुंचाया और देशवासियों ने गुलामी का जुआ उतार फेंकने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

डॉ० राय ने बताया कि विदेशी सरकार ने बाढ़ और अकाल के दिनों में भी किसानों से वसूल किये जाने वाले टैक्सों में कोई कमी नहीं की। इतने पर भी यदि वह एक प्रतिशत रुपया भी उन लोगों पर खर्च करती, तो किसानों को बाढ़ और अकाल से बहुत कुछ राहत मिल सकती थी।

डॉ० राय ने उन दिनों एक और बात अनुभव की। वह थी सांप्रदायिक एकता। प्रायः जिन क्षेत्रों में बाढ़ें आती थीं, वहां मुसलमानों की आबादी ज्यादा थी और बाढ़ और अकाल पीड़ितों की सहायता करने वालों में अधिक संख्या हिंदुओं की थी। उन दिनों किसी के मन में सांप्रदायिक भेदभाव की कोई बात न आई। परंतु अंग्रेजों ने भारत को आजाद करते समय भी सांप्रदायिकता का विष-बीज यहां बो दिया और देश के टुकड़े कर दिए।



कमल के समान

कमल जिस प्रकार कीचड़ में खिलकर कीचड़ से अलग रहता है, उसी प्रकार डॉ० राय ने देश में अनेक उद्योग-धंधों की स्थापना की, परंतु उनका ध्येय धन कमाना कभी नहीं रहा। उनका ध्येय तो स्वदेशी उद्योग-धंधों की स्थापना करना तथा अन्य व्यापारियों को उसके लिए प्रेरित करना था। उनका विचार तो दूसरों के सामने एक ऐसा आदर्श पेश करने का था कि वे लोग भी देश की उन्नति के लिए उसी प्रकार के मार्ग पर चलें।

'बंगाल कैमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स' से उन्हें जो लाभ प्राप्त होता था, वह उसे परोपकार के कार्यों में खर्च कर देते थे। उन्होंने अनेक स्कूलों के लिए रुपया दिया, अनेक विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां दीं।

कंपनी में उनके जितने हिस्से थे, वे उन्होंने एक ट्रस्ट को सौंप दिए थे। उनसे जो आय होती थी, वह विभिन्न संस्थाओं और कल्याण संबंधी कार्यों के लिए खर्च हो जाती थी।

आप सोचते होंगे कि इतनी कंपनियां स्थापित करने वाला व्यक्ति बहुत धनी होगा और उसके पास बहुत धन-संपत्ति होगी। परंतु धन-संपत्ति के नाम पर डॉ० राय के पास थीं कुछ कुर्सियां, दो चार मेजें, दो-तीन धोतियां, और अपनी पुस्तकें।

सच तो यह है कि उनका जीवन दूसरों के कल्याण के लिए था। इसी कारण उन्होंने विवाह भी नहीं किया था। वह अपनी

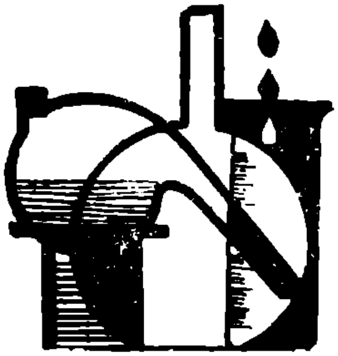
आवश्यकताओं के लिए बहुत ही कम रुपया खर्च करते थे। वास्तव में पुस्तकों आदि के अतिरिक्त उनकी विशेष आवश्यकताएं थीं भी नहीं।

बंगाल कैमिकल कारखाने में काम करने वाले कर्मचारियों को वे अपने परिवार के सदस्य की तरह मानते थे। वे उनको प्रत्येक सुविधा देने के लिए तैयार रहते थे। उन्होंने कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल और स्वयं कर्मचारियों के लिए पुस्तकालय, वाचनालय और खेलकूद की सुविधाएं भी जुटा दी थीं। उस जमाने में अपने कर्मचारियों की भलाई के लिए उन्होंने 'प्राविडेंट फंड योजना' लागू की थी।

डॉ० राय इस कारखाने के कामों में जीवन के अन्तिम क्षणों तक रुचि लेते रहे। इस कारखाने की समृद्धि और गौरव का कारण डॉ० राय की लगन ही थी। उन्होंने देश में बढ़िया उत्पादनों की सुन्दर परम्परा डाली और नये लगने वाले कारखानों के लिए एक आदर्श उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

डॉ० राय ने अपने कार्यों से ब्रिटिश सरकार के शिक्षा विभाग के उस डायरेक्टर को करारा उत्तर दिया, जिसने उन्हें ताना देते हुए कहा था—"तुम्हें कोई नौकरी करने के लिए मजबूर तो नहीं कर रहा। यदि इतने बड़े रसायनशास्त्री हो तो अपना व्यवसाय क्यों नहीं शुरू कर लेते ?"

यह कोई साधारण बात नहीं थी। आज के बेकार नवयुवक भी उनके इस उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।



प्रत्येक क्षण उपयोगी

बहुत से लोग प्रायः शिकायत किया करते हैं कि उनके पास समय नहीं है। समय की शिकायत करना बहुत सरल है, परन्तु उसके सदुपयोग से जीवन को सफल करना बहुत ही कठिन और महत्त्वपूर्ण कार्य है।

डॉ० राय बचपन से बीमार रहते थे। उनकी पाचन-शक्ति कमजोर थी। पेचिश आदि पेट की बीमारियां रहती थीं और अनेक बार रात-रातभर उन्हें नींद भी न आती थी और सारी रात कई बार पुस्तकें पढ़ने, पत्र लिखने और फाइलें आदि देखने में ही बीत जाती थी।

आपने उनका चित्र देखा होगा—एक दुबला-पतला शरीर—और करता था इतने लम्बे-चौड़े, महत्त्वपूर्ण कार्य।

आप सोच सकते हैं कि उन्होंने यह सब कार्य किस प्रकार किए ?

इन सबका कारण था—समय का सदुपयोग।

वे कभी भी एक मिनट भी व्यर्थ न जाने देते थे। वह कहा करते थे, "मेरा पूरी तरह विश्वास है, यदि मनुष्य ठीक समय पर ठीक काम करे, तो अपनी शक्ति से दस गुना अधिक कार्य कर सकता है।"

यही था डॉ० राय के सफल जीवन का निचोड़।

डॉ० राय की आदत थी, वह प्रतिदिन डायरी लिखा करते

थे। गर्मी हो या जाड़ा, वे सुबह साढ़े चार-पांच बजे उठ बैठते। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए कुछ दूर घूमने जाते और शौच आदि से निवृत्त होकर थोड़ा-सा नाश्ता करते। छः बजे तक वह अपने कार्य पर बैठ जाते थे।

उनके कार्य का आरम्भ स्वाध्याय से होता था। बहुत से नौजवान जब तक सोकर उठते, तब तक वह बहुत-सा पढ़ डालते।

वह प्रतिदिन एक-एक मिनट का हिसाब रखा करते थे। उन्होंने यह नियम इंग्लैण्ड और योरोप की यात्राओं के समय भी नहीं तोड़ा। सम्भवतः आप भी उनकी दिनचर्या का एकाध नमूना देखना चाहेंगे :

> 15 जून, 1920,
> प्रातः 7 से साढ़े आठ बजे तक जर्मन कैमिकल सोसाइटी की रसायन-विज्ञान सम्बन्धी पत्रिका का अध्ययन।
> सवा नौ बजे प्रयोगशाला।
> 1.30 से 2.30 तक फिर प्रयोगशाला। वहां से मोटर लेकर पॉटरी वर्क्स। साढ़े चार बजे लौटकर फिर प्रयोगशाला। पांच बजे जोला का उपन्यास पढ़ा।
> सवा छः बजे से साढ़े सात बजे तक सिटी कॉलेज की कौंसिल की बैठक में भाग लिया।
> आठ से साढ़े नौ बजे रात मैदान क्लब। (डॉ० राय भ्रमण करने के लिए जब बाहर मैदान में जाते थे, तब उसे मैदान क्लब कहा करते थे।)

डॉ० राय जर्मन कवि गेटे की इस उक्ति को सदा ध्यान में रखते थे—उसने कहा है : "समय अनन्त रूप से लम्बा है। यदि हम उसका पूरी तरह से उपयोग करें, तो अधिकांश चीजें उसके घेरे के अन्दर आ जाती हैं।"

डॉ० राय को प्रायः देश के विभिन्न भागों में भाषणों अथवा सभाओं की अध्यक्षता के लिए बुलाया जाता था। दो-तीन बार

उन्होंने सारे देश का दौरा भी किया था, परन्तु यात्रा के इस समय को भी उन्होंने व्यर्थ न जाने दिया। वे इस समय के उपयोग के लिए मोटे टाइप की कोई किताब अपने साथ रखते थे और गाड़ी में हिचकोले खाते हुए भी उसे पढ़ते रहते थे, जबकि अधिकांश यात्री या तो सोकर अपना समय काटते थे या गपशप द्वारा।

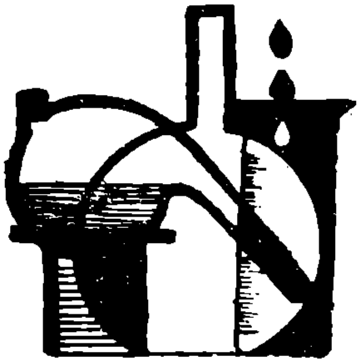
अध्ययन से उनका सदा यह अभिप्राय रहता था कि ज्ञान-प्राप्ति अथवा कोई भाषा आदि सीखने के लिए पुस्तकों का अध्ययन किया जाय।

अन्त तक देहाती से दिखाई देनेवाले इस महान् व्यक्ति ने इसी प्रकार के गुणों को अपनाकर उन्नति की। धीरे-धीरे वह महान् वैज्ञानिक, शिक्षक और देशभक्त ही न बने, वरन् उन्होंने एक आदर्श मानव का स्थान भी ग्रहण किया।

बात 1922 की है। कलकत्ता में इंग्लैण्ड के समाचार पत्र 'मानचेस्टर गार्जियन' का प्रतिनिधि रहता था। उसने एक बार लिखा था और यह बात उसके अखबार में छपी भी थी :— "मैंने एक यूरोपियन को कहते सुना है, यदि गांधीजी दो प्रफुल्लचन्द्र राय बना सकते, तो 1922 में ही स्वराज्य प्राप्त करने में सफल हो जाते।"

कितनी सच्चाई है उसकी बात में ! देश को प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे वैज्ञानिकों की आवश्यकता थी। उन जैसा गरीब जनता से प्यार करनेवाला व्यक्ति ही निःस्स्वार्थ भाव से देश की सेवा कर सकता था।

•



डॉ० राय अमर हो गए

1941 में वे अस्सी वर्ष के हो चुके थे। उनकी अस्सीवीं वर्ष-गांठ मनाने के लिए एक बड़े समारोह का आयोजन किया गया था। इस समारोह में लोगों की श्रद्धा देखते ही बनती थी। इतनी संस्थाओं की ओर से मानपत्र दिए गए, जिन सबको पढ़कर सुनाना कठिन था, अतः केवल संस्थाओं के नाम सुनाए जा सके। फूलों का इतना ढेर हो गया था कि सारा मंच भर गया। डॉ० राय श्वेत खादी के वस्त्र पहने, बर्फ के समान श्वेत दाढ़ी, दुबले, परन्तु तेजस्वी मुख-मंडल के कारण मंच पर बैठे हुए राजर्षि से प्रतीत हो रहे थे। उन्होंने उस समय कहा :

"मृत्यु के बाद भी मैं उन व्यक्तियों के रूप में सदा जीवित रहूंगा जो अन्याय, अत्याचार और अज्ञान के विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं और मानव-समाज को पराधीनता और निर्धनता से मुक्ति दिलाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।"

तीन वर्ष बाद तिरासी वर्ष की आयु में 14 जून, 1944 को यह महान् व्यक्ति इस संसार से विदा हो गया। यदि वह आज जीवित होते तो अपने सपनों को पूरा होते हुए देखते।

आज उस वैज्ञानिक का शरीर हम नहीं देख पाते, परन्तु उनके सपनों को पूरा होते हुए अवश्य देख रहे हैं।

मुद्रक : के.के. प्रिंटर्स. कमला नगर, दिल्ली में मुद्रित

4872

प्रेरणाप्रद, रोचक एवं सरल जीवन-चरित्र

मेरा बचपन	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
क्रान्तिकारी ऋषि कार्ल मार्क्स	लाला हरदयाल
हमारे राष्ट्र-निर्माता	सत्यकाम विद्यालंकार
महापुरुषों की झांकियां	आचार्य चतुरसेन
हमारे स्वामी	चमूपति एम० ए०
महापुरुषों के संस्मरण	विश्वनाथ
गांधी जी से क्या सीखें	विश्वनाथ
सत्य का पुजारी	प्रकाश पण्डित
महापुरुषों का बचपन	प्राणनाथ वानप्रस्थी
आदर्श बालक	प्राणनाथ वानप्रस्थी
आदर्श देवियां	प्राणनाथ वानप्रस्थी
सच्ची देवियां	प्राणनाथ वानप्रस्थी
साहसी बालक	प्राणनाथ वानप्रस्थी
भारत के महान् ऋषि	प्राणनाथ वानप्रस्थी